HIN3B18b

अयोध्या सिंह उपाध्याय "हरिऔध" (१८६५-१९४५)

हमारा पतन

जैसा हमने खोया, न कोई खोवेगा
ऐसा नहिं कोई कहीं गिरा होवेगा

एक दिन थे हम भी बल विद्या बुधिवाले
एक दिन थे हम भी धीर वीर गुनवाले
एक दिन थे हम भी आन निभानेवाले
एक दिन थे हम भी ममता के मतवाले
जैसा हम सोए क्या कोई सोवेगा
ऐसा नहिं कोई कहीं गिरा होवेगा

जब कभी मधुर हम साम गान करते थे
पत्थर को मोम बना करके धरते थे
मन पसू और पंखी तक का हरते थे
निरजीव नसों में भी लोहू भरते थे
अब हमें देखकर कौन नहीं रोवेगा
ऐसा नहिं कोई कहीं गिरा होवेगा

जब कभी विजय के लिए हम निकलते थे
सुन करके रण-हुंकार सब दहलते थे
बल्लियों कलेजे वीर के उछलते थे
धरती कँपती थी, नभ तारे टलते थे
अपनी मरजादा कौन यों डुबौवेगा
ऐसा नहिं कोई कहीं गिरा होवेगा

हम भी जहाज पर दूर दूर जाते थे
कितने दीपों का पता लगा लाते थे
जो आज पासफिक ऊपर मँडलाते थे
तो कल अटलांटिक में हम दिखलाते थे
अब इन बातों को कहा कौन ढोवेगा
ऐसा नहिं कोई कहीं गिरा होवेगा

तिल तिल धरती था हमने देखा भाला
अमरीका में था हमने डेरा डाला
यूरप में भी था हमने किया उजाला
अफरीका को था अपने ढंग में ढाला
अब कोई अपना कान भी न टोवेगा
ऐसा नहिं कोई कहीं गिरा होवेगा

सभ्यता को जगत में हमने फैलाया
जावा में हिंदूपन का रंग जमाया
जापान चीन तिब्बत तातार मलाया
सबने हमसे ही धरम का मरम पाया
हम सा घर में काँटा न कोई बोवेगा
ऐसा नहिं कोई कहीं गिरा होवेगा

अब कलह फूट में हमें मजा आता है
अपनापन हमको काट काट खाता है
पौरुख उद्यम उतसाह नहीं भाता है
आलस जम्हाइयों में सब दिन जाता है
रो रो गालों को कौन यों भिंगोवेगा
ऐसा नहिं कोई कहीं गिरा होवेगा

अब बात बात में जाति चली जाती है
कँपकँपी समुंदर लखे हमें आती है
"हरिऔध" समझते ही फटती छाती है
अपनी उन्नति अब हमें नहीं भाती है
कोई सपूत कब यह धब्बा धोवेगा
ऐसा नहिं कोई कहीं गिरा होवेगा

एक तिनका

मैं घमण्डों में भरा ऐंठा हुआ,
एक दिन जब था मुंडेरे पर खड़ा ।
आ अचानक दूर से उड़ता हुआ,
एक तिनका आँख में मेरी पड़ा ।

मैं झिझक उट्ठा, हुआ बेचैन-सा,
लाल होकर आँख भी दुखने लगी ।
मूठ देने लोग कपड़े की लगे,
ऐंठ बेचारी दबे पावों भगी ।

जब किसी ढब से निकल तिनका गया,
तब समझ ने यों मुझे ताने दिये ।
ऐंठता तूं किस लिए इतना रहा,
एक तिनका है बहुत तेरे लिए ॥